The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 4 | Issue 7 | July 2026
ISSN: 2583-973X (Online), SJIF IF(2026): 5.6
Website: www.theacademic.in

भारतीय ज्ञान परम्परा में सतत विकास के निहतार्थ: दार्शनिक एवं ऐतिहासिक परिपेक्ष्य का विशेष संदर्भ

डॉ आनंद कुमार त्रिपाठी

असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय महाविद्यालय लेंगड़ी गूलर, श्रावस्ती, उत्तर प्रदेश-271835

Email ID: tripathianand335@gmail.com

DOI : https://doi.org/10.5281/zenodo.22098286

ARTICLE DETAILS

Research Paper

Received: 23-06-2026

Accepted: 25-07-2026

Published: 21-08-2026

Keywords:

भारतीय ज्ञान परंपरा, *भारतीय दर्शनजीवन* शैली, *अति उपभोक्तावाद, सतत विकास, ऐतिहासिक चेतना।*

ABSTRACT

भारतीय ज्ञान परम्परा में सतत विकास की अवधारणा मूल एवं अन्तर्निहित है। यह भारतीय जीवन शैली, दर्शन, और ऐतिहासिक चेतना का मूल आधार रही है। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में अति उपभोक्तावाद, जैव-विविधता का विनाश, एवं जलवायु परिवर्तन ने मानव जाति के अस्तित्व पर संकट खड़ा कर दिया है। इस समय भारतीय ज्ञान परम्परा, जोकि भारतीय संस्कृति, समाज, तथा जीवन शैली से निर्मित है, सतत विकास हेतु विस्तृत एवं गहन दृष्टिकोण प्रदान करता है। भारतीय ज्ञान परम्परा एक विस्तृत एवं अविछिन्न स्वदेशी ज्ञान पर आधारित है जिसका मूल प्राचीन ग्रंथों वेद, उपनिषद, एवं धर्मशास्त्र में है। भारतीय संस्कृति और समाज, एवं जीवनशैली ने सतत विकास के जीवंत उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, जिसमें विकास को मानव के साथ-साथ सभी जीवों तक विस्तारित करके मूल्यांकन किए जाने की नीति थी। प्रस्तुत शोधपत्र भारतीय ज्ञान रम्परा के अन्तर्गत भारत के उन ऐतिहासिक एवं दार्शनिक साक्ष्यों पर प्रकाश डालने का प्रयास करता है जिसमें सतत विकास के सभी अवयव विद्यमान हैं।

Disclaimer: The opinions, interpretations, conclusions, recommendations, analyses, and statements expressed in this research article are solely those of the author(s) and do not reflect the views, policies, or positions of the Publisher, Chief Editor, Editors, Editorial Board, Reviewers, or their affiliated institutions. The author(s) are solely responsible for ensuring the originality, authenticity, and integrity of the manuscript and for ensuring that it is free from plagiarism, AI-generated content, copyright infringement, data falsification, and any other form of academic misconduct.

प्रस्तावना

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में 'सतत विकास' शब्द विमर्श के केंद्र में आया। इस विमर्श की आवश्यकता इसलिए महसूस की गयी क्योंकि इस समय तक उपभोक्तावाद और मानव सुख आधारित नैतिकताएं पर्यावरणीय चिंताओं, और पीढ़ीगत विकास की सततता को अनदेखा कर रही थीं। सतत विकास को एक ऐसे विकास के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें वर्तमान पीढ़ी अपनी अवश्यकताओं को आने वाली पीढ़ियों की आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता से समझौता किए बिना पूरा कर सके। परंतु सतत विकास की यह परिभाषा भी मानव-केंद्रित मानी जाती है। आवश्यकता इस बात की है कि सतत विकास को पृथ्वी के सभी जीवों की आवश्यकता के संदर्भ में देखा जाए। इस मानव-केंद्रित परि भाषा के विपरीत भारतीय ज्ञान परम्परा में सतत विकास दृष्टिकोण ब्रहमांड-केन्द्रित और पारिस्थितिकी-केन्द्रित है। यह मानव प्रकृति का स्वामी नहीं, बल्कि उसका सूक्ष्म अवयव मात्र है। ऋग्वेद से लेकर महात्मा गांधी के हिन्द स्वराज तक भारतीय चितंन में सदैव आवश्यकता पर आधारित सीमित उपभोग पर जोर दिया गया है जबकि दृष्टिकोण असीमित इच्छाओं के प्रबन्धन पर आधारित है। सतत विकास की पश्चिमी अवधारणा 'संसाधनों' के दोहन और संरक्षण के संतुलन' के बजाय भारतीय चिंतन में सतत विकास को 'प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व' के रूप में देखा गया है।

औद्योगिक क्रान्ति के बाद पूँजीवादी देशों द्वारा जो विकास मॉडल स्वीकार किया गया वह 'प्रकृति पर विजय' और 'असीमित उपभोग' पर आधारित था। भारतीय ज्ञान परम्परा में विकास की अवधारणा कभी भी प्रकृति के विनाश की कीमत पर नहीं प्रकट की गयी। भारतीय चिंतक हजारों वर्ष पूर्व भी इस बारे में जागरूक थे कि मानव का अस्तित्व प्रकृति की सम्प्रभुता और उसकी चक्रीय व्यवस्था (ऋतु) पर निर्भर है।

भारतीय ज्ञान परम्परा में मानव-प्रकृति सम्बन्ध को 'प्रकृति रक्षति रक्षित' सूक्ति के माध्यम से दर्शाया जाता रहा है जिसका अर्थ है कि जो प्रकृति की रक्षा करता है, प्रकृति उसकी रक्षा करती है। भारतीय चिंतन में यही जीवन का आधारभूत सिद्धांत है। वेदों के काल से लेकर औद्योगिक युग के पहले और कुछ क्षेत्रों एवं वर्गों में अभी तक भारतीय समाज ने एक ऐसी जीवन शैली का विकास किया जो आज के सतत विकास अवधारणा के तीनों स्तंभों- पर्यावरण, समाज और अर्थव्यवस्था को पूरी तरह संतुष्ट करती है। भारतीय ज्ञान परंपरा भारतीय समाज को आयुर्वेद, योग, वैदिक शिक्षा, और संपोषणीय कृषि विधियों के माध्यम से मार्गदर्शन प्रदान करता है। यह परम्परा वृहद जनकल्याण, नैतिक उत्तरदायित्व, और प्रकृति तथा मानव के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी समाजिक सामाजिक संस्थाओं के निर्माण पर जोर देता है।

इस शोध-पत्र के अन्तर्गत भारतीय संस्कृति में भारतीय ज्ञान परम्परा के महत्व, इसके ऐतिहासिक एवं दार्शनिक सन्दर्भ, और वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में इसकी उपादेयता के परीक्षण का प्रयास किया गया है। भारतीय दर्शन और इतिहास प्रकृति के साथ जीवन के गुणवत्ता को बढ़ाने तथा उत्तरदायित्व पूर्ण जीवन हेतु तत्पर रहने के

अनेक उदाहरणों एवं संदर्भों को समाहित किए हुए है। भारतीय दर्शन का मूल आधार यह है कि चेतना केवल मनुष्यों में नहीं बल्कि जड़ में भी व्याप्त है। इसलिए प्रकृति (जड़) का दोहन नहीं, वंदन करना चाहिए। भारतीय दर्शन के अन्तर्गत उपनिषदों तथा आगे चलकर अद्वैत वेदान्त में न्यूनतम उपभोग के सार्वभौमिक नियम की चर्चा कई श्लोकों में की गयी है। भारतीय ऐतिहासिक एवं वैदिक परम्पराओं में संसाधनों के उचित प्रयोग एवं पुनर्भरण पर विस्तृत चर्चा की गयी है। भारतीय ज्ञान परम्परा के अन्तर्गत दार्शनिक एवं ऐतिहासिक सन्दर्भों के साथ सतत विकास हेतु व्यापक विमर्श एवं नैतिक निर्देश वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में उनकी प्रासंगिकता को स्थापित करते हैं। सतत विकास हेतु वर्तमान मानदण्ड सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) के अन्तर्गत 17 लक्ष्यों के रूप में निर्मित किए गए हैं।

भारतीय ज्ञान परम्परा के अन्तर्गत सतत विकास हेतु दार्शनिक एवं ऐतिहासिक सदर्भों को सतत विकास लक्ष्यों के साथ संरेखित किया जा सकता है। यह संरेखण वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में प्राचीन भारतीय दर्शन एवं ऐतिहासिक तथा दार्शनिक विचगों की प्रासंगिता को सिद्ध करते हैं।

अध्ययन के उद्देश्य

1. भारतीय ज्ञान परम्परा के अन्तर्गत सतत विकास के दार्शनिक और ऐतिहासिक आधारों का अन्वेषण करना।
2. प्राचीन भारतीय ग्रंथों में वर्णित पर्यावरण संरक्षण और प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन सिद्धांतों का विश्लेषण करना।
3. कृषि, जल प्रबंधन, एवं वानिकी के व्यावहारिक एवं ऐतिहासिक साक्ष्यों को रेखांकित करना।
4. भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल सिद्धांतों का सतत विकास लक्ष्यों के साथ अंतरसंबंधों और प्रासंगिकता का परीक्षण करना।
5. समकालीन वैश्विक पर्यावरणीय संकट के समाधान में भारतीय दृष्टिकोण की भूमिका का परीक्षण करना।

शोध प्रविधि

शोध पत्र में गुणात्मक तथा ऐतिहासिक-विश्लेषणात्मक शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया है। अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के स्त्रोतों का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक स्त्रोत के अन्तर्गत प्राचीन भारतीय मूलग्रन्थ का प्रत्यक्ष सन्दर्भ लिया गया है जबकि द्वितीयक स्त्रोत के अंतर्गत शोध पत्र के विषय से सम्बन्धित आधुनिक शोध पत्र, प्रतिष्ठित अकादमिक जर्नल, पुस्तकों, और संयुक्त राष्ट्र सहित महत्वपूर्ण राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के रिपोर्ट का सन्दर्भ लिया गया है।

अवधारणात्मक रूपरेखा

हाल के वर्षों में पर्यावरण से सम्बधित अध्ययन वैश्विक परिदृश्य में चरम मौसमी घटनाओं में वृद्धि और उनसे मानव पर पड़ने वाले नकारात्मक प्रभावों के बारे में कई महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रदान किए हैं। आज के दौर में जब जलवायु परिवर्तन एवं अन्य पर्यावरणीय संकटो की बारम्बारता बढ़ती जा रही है, हमें एक ऐसे अवधारणा की आवश्यकता है जो लोगों में पर्यावरणीय चेतना का विकास कर पाए। पर्यावरणीय चेतना को पर्यावरण एवं मानव क्रियाओं के अंतरसंबंध और सामुदायिक तथा व्यक्तिगत रूप में सतत या संपोषणीय व्यवहार को स्वीकार किए जाने के रूप में जाना जाता है। भारतीय ज्ञान परम्परा के अन्तर्गत भारतीय दर्शन, संस्कृति, एवं परम्पराएं पर्यावरणीय चेतना को स्वीकार करने पर जोर देती रहीं है।

भारतीय दार्शनिक विचार पर्यावरण को केवल जड़ के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसे गतिक, अन्तरसम्बन्धित प्रणाली के रूप में अवधारित करता है, जहाँ मानव का अन्य जीवों के साथ सह-अस्तित्व है। यह दृष्टिकोण इस बात पर जोर देता है कि कैसे समग्र रूप से प्राकृतिक जगत को समझा जा सके एवं उससे जुड़ा जा सके। प्राचीन भारतीय दार्शनिक पर्यावरणीय रक्षा को मूल कर्तव्य के रूप में स्वीकार किए जाने पर जोर देते थे। भारतीय दार्शनिक ग्रन्थों में इस तथ्य को उल्लेख किया जाता रहा है कि मानव भौतिक तत्वों से निर्मित है जो अन्ततः मृत्यु होने पर अपघटित होकर प्रकृति में वापस चला जाता है। ये नौ तत्व, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, समय, दिशा, मन और मृदा हैं। भारतीय पौराणिक कथाओं में इनमें से कुछ तत्वों के पहले प्रकट होने और जगत के निर्माण के साथ उनके विकास की चर्चा की गई है।

ऐतिहासिक रूप से भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण को प्राचीन शास्त्रों एवं ऋषियों के शिक्षाओं के माध्यम से प्रोत्साहित किया गया है। पर्यावरण के सम्बन्ध में इन नैतिक नियमों एवं मूल्यों ने सामान्य जनमानस के साथ साथ शासकों को भी प्रभावित किया है। पर्यावरण एवं प्रकृति हेतु नैतिक मूल्यों ने लोगों के दैनिक जीवन एवं परम्पराओं के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। प्राचीन भारतीय संस्कृति सोमृति में लघु पर्यावरणीय मुद्दों हेतु भी विशेष समाधान को लाया जाता था। विभिन्न प्रकार के दार्शनिक उपागमों एवं आध्यात्मिक नेतृत्वकताओं के शिक्षाओं और प्रबोधनों ने सतत जीवनशैली के लिए रूपरेखा प्रदान किया, जो पर्यावरण के साथ मानव के सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध पर आधारित था।

ईसा पू. तीसरी सदी के अशोक के स्तम्भलेखों और शिलालेखों में पर्यावरणीय चेतना के प्रारम्भिक ऐतिहासिक साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। ये साक्ष्य निर्वनीकरण, वायुमण्डलीय प्रदूषण, और रोगों के बीच संबंधों की समझ को दर्शाते हैं। सतत विकास हेतु प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में ऐतिहासिक एवं दार्शनिक दोनो दृष्टियों से पर्यावरण, उपभोग, उत्तरदायित्वपूर्ण मानव व्यवहार, अन्तरपीढ़ी समझ आदि भारत की ज्ञान परम्परा में संपोषणीयता के अमिट प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। अवधारणात्मक रूपरेखा के अन्तर्गत सतत विकास के प्राचीन ऐतिहासिक एवं दार्शनिक समझ को आज की दृष्टि के साथ प्रस्तुत किए जाने का प्रयास किया गया है।

दार्शनिक आयाम एवं वैचारिक निहतार्थ

भारतीय ज्ञान परम्परा में सतत विकास केवल एक आर्थिक उद्देश्य नहीं बल्कि एक नैतिक धर्म (कर्तव्य) है। भारतीय ज्ञान परम्परा के अन्तर्गत मुख्य दार्शनिक आयाम हैं:

- ईशावास्य उपनिषद :न्यूनतम उपभोग का सार्वभौमिक नियम हमें ईशावास्य उपनिषद से प्राप्त होता है। भारतीय पर्यावरण दर्शन का सबसे प्रखर एवं प्राचीनतम प्रमाण 'ईशावास्योपनिषद' के प्रथम श्लोक में मिलता है-

  ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
  तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥

  अर्थात इस परिवर्तनशील संसार में जो कुछ भी (जड़-चेतन) है, वह सब ईश्वर द्वारा व्याप्त है। अतः इस जगत के संसाधनों का उपभोग 'त्याग-भाव' (संयम) के साथ करो। किसी अन्य के धन या संसाधन का लोभ मत करो। उपर्युक्त श्लोक वर्तमान के असीमित उपभोक्तावाद पर सीधा प्रहार करता है। यह बताता है कि यदि हमारी आवश्यकताएं न्यूनतम होंगी तो अन्य जीवों और आगे की पीढ़ियों के लिए भी संसाधन सुरक्षित रह पायेगें। यह दृष्टिकोण आधुनिक सतत विकास की परिभाषा को विस्तृत करता है।
- पंचमहाभूत सिद्धांत :भारतीय ऋषियों ने सम्पूर्ण ब्रह्मांड और मानव शरीर दोनों को पाँच तत्वो यथा- क्षिति (पृथ्वी), जल, पावक (अग्नि), गगन (आकाश) और समीर (वायु) से निर्मित माना है। इन पांच तत्वो की शुद्धता और संतुलन ही जीवन का आधार है। आयुर्वेद मानता है कि इन तत्वों में असंतुलन ही व्याधियों (महामारियों और जलवायु परिवर्तन) का कारण बनता है। अविवेकपूर्ण उपभोग इन तत्वों में असंतुलन के माध्यम से प्रकृति को नकारात्मक रूप में प्रभावित करता है जो अन्ततः मानव सहित सभी जीवों के लिए अकल्याणकारी होता है।
- एकात्म चेतना - अद्वैत वेदान्त (सर्वं खल्विदं ब्रह्म अर्थात सब कुछ ब्रह्म ही है) सिद्धांत मनुष्य और प्रकृति के बीच की दूरी को समाप्त कर देता है। जब पर्वत, वृक्ष, नदी, और मानव सभी एक ही परम तत्व के रूप हैं, तो पर्यावरण को क्षति पहुँचाना स्वयं को क्षति पहुँचाने के समान है।

ऐतिहासिक प्रमाण एवं व्यावहारिक अनुप्रयोग

भारतीय प्राचीन इतिहास में वैदिक काल से ही मानव और पर्यावरण के बीच अन्तर्सम्बंध पर समझ हेतु व्यापक चर्चा की गई है। अथर्ववेद का भूमि सूक्त/पृथ्वी सूक्त पर्यावरण चेतना व्यापक प्रकटन है। इनमें सभी श्लोक पृथ्वी और मानव के अन्तर्सम्बन्धो को समर्पित है। यथा-

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।

अर्थात मानव पृथ्वी का पुत्र है। एक पुत्र अपनी मात्रा की छाती से दूध पी सकता है, लेकिन रक्त नहीं निकाल सकता है। इसका आशय यह है कि आवश्यकता हेतु प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग उचित है लेकिन इच्छा की पूर्ति हेतु शोषण सर्वथा अनुचित है। इसी तरह यजुर्वेद का शांति पाठ केवल मानवों की शांति की कामना नहीं करता है। यहाँ कहा गया है कि अन्तरिक्ष, पृथ्वी, जल, औषधियां और वनस्पतियाँ जब सभी अपनी प्राकृतिक अवस्था (शान्तरूप) में रहेंगी, तभी मानव जीवन शान्त और सतत रह सकता है।

भारतीय समाज को चलाने के लिए जो सामाजिक नैतिक संरचना बनाई गई थी, उसमें 'धर्म' को आर्थिक गतिविधियों से ऊपर रखा गया था। कौटिल्य ने 'अर्थशास्त्र' में स्पष्ट किया है कि यदि 'अर्थ' का अर्जन धर्म की सीमाओं को तोड़कर किया जायेगा तो वह साम्राज्य के विनाश का कारण बनेगा। यह दृष्टिकोण आज के कॉरपोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (CSR) और आहे पर्यावरणीय नैतिकता के प्राथमिक रुप को प्रदर्शित करता है। भारतीय ज्ञान परम्परा के अन्तर्गत दार्शनिक नैतिक नियम एवं ऐतिहासिक सिद्धांत, प्राचीन काल से भारत में व्यावहारिक रूप में प्रकट होते रहे हैं।

कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में वनों का वर्गीकरण 'द्रव्यवन' (सामग्री के लिए वन) और 'हस्तिवन' (हाथियों/जीवों के संरक्षण के लिए वन) के रूप में किया गया था। 'हस्तिवन' वर्तमान के 'वाइल्डलाइफ सेंचुरी' के रूप में देखा जा सकता है। इस ग्रन्थ में वृक्षों के काटने पर कड़े दण्ड का प्रावधान किया गया था। नदी और सार्वजनिक स्थानों को गंदा करने पर भी कड़े दण्ड दिए जाने का कानून था।

प्राचीन ग्रन्थ 'कृषि पराशर' जैविक एवं प्राकृतिक कृषि किए जाने और फसल चक्र के वैज्ञानिक उपयोग का वर्णन है। जबकि सूरपाल द्वारा रचित 'वृक्षायुर्वेद' ग्रन्थ में पौधों के रोगों, उनके उपचार और वृक्षारोपण के नियमों का विवरण दिया गया है। पीपल, बरगद, तुलसी, नीम को 'धार्मिक पवित्रता' से जोड़कर उनका काटना वर्जित किया गया क्योंकि वैज्ञानिक रूप से ये वृक्ष सर्वाधिक ऑक्सीजन और औषधीय लाभ प्रदान करते हैं।

भारत के शुष्क क्षेत्रो में प्राचीन काल से जल के एक-एक बूंद को सहेजने की अनूठी प्रणालियां विकसित होती रही हैं। बावड़ी और कुंड वर्षा जल को भूमिगत टैंकों में जमा करने हेतु निर्मित स्थापत्य के बेजोड़ नमूने थे। मध्य भारत और बिहार में जोहड़ और अहार-पाइन बाढ़ के पानी को खेतों तक ले जाने के स्वदेशी तकनीकि थे।

सतत विकास लक्ष्यों के साथ प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक आयामों का संरेखण

संयुक्त राष्ट्र द्वारा 2015 में 17 सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) को तैयार किया गया था, जिसे 2030 तक पूरा किया जाना है। भारतीय ज्ञान परम्परा और सतत विकास लक्ष्यों के बीच एक गहरा सामंजस्य देखा जा सकता है। जिम्मेदार उपभोग और उत्पादन (SDG12) ईशावास्य उपनिषद के प्रथम श्लोक के साथ, जलवायु कार्यवाही और भूमि पर जीवन (SDG13 और SDG15) अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त और वन/जीवों के प्रति 'भूतयज्ञ' के साथ, स्वच्छ जल और

स्वच्छता (SDG6), ऋग्वेद में जल को देवता (आपः) मानना और कौटिल्य के जल-प्रदूषण विरोधी कानून के साथ, तथा भूमि पर जीवन (SDG15) महा उपनिषद के 'वसुधैव कुटुम्बकम्' (पूरा जगत अपना है) की भावना के साथ संरेखित होता है।

सतत विकास लक्ष्यों का भारतीय ज्ञान परम्परा के साथ संरेखण प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक आयमों के महत्व और दूरदर्शी प्रभाव को दर्शाता है। हाल के वर्षों में भारत ने पर्यावरण क्षरण रोकने हेतु अपनी प्रतिबद्धता को दिखाया है। सतत विकास लक्ष्यों का मूल भारतीय ज्ञान परम्परा में पाया जाना भारत की संस्कृति और परम्परा में संपोषणीयता एवं समावेशिता जैसे मूल्यों के अन्तरनिहितता को दर्शाता है।

वर्तमान प्रासंगिकता एवं चुनौतियां

आज जब विश्व कार्बन उत्सर्जन में कमी के लिए मार्ग के तलाश में है और विकास बनाम पर्यावरण के दुविधा में झूल रहा है तब भारतीय ज्ञान परम्परा एवं प्राचीन भारतीय संस्कृति कार्बन उत्सर्जन का व्यावहारिक एवं संपोषणीय समाधान प्रदान करने की क्षमता रखता है। भारत सरकार द्वारा वैश्विक मंच पर पर्यावरण के लिए जीवन शैली (LiFE) मिशन भारतीय ज्ञान परम्परा के व्यावहारिक अनुप्रयोग को दर्शाता है। यह मिशन अविवेकपूर्ण उपभोग के स्थान पर न्यूनतम, विवेकशील एवं आवश्यकता आधारित उपभोग का मॉडल प्रस्तुत करके अन्य देशों का मार्गदर्शन का कर रहा है। अंतर्राष्ट्रीय सौर गठबन्धन (ISA) और आपदा प्रतिरोधी अवसंरचना हेतु गठबंधन (CDRI) जैसे भारतीय पहलें दर्शाते हैं कि भारत अपने प्राचीन ऐतिहासिक तथा दार्शनिक ज्ञान के आलोक में विश्व को सतत विकास हेतु नई दिशा प्रदान कर रहा है।

उपर्युक्त विश्लेषण भारतीय ज्ञान परम्परा में सतत विकास हेतु मार्गदर्शन की क्षमता को दिग्दर्शित करते हैं। फिर भी, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि पश्चिमी विकास मॉडलों के अंधानुकरण के कारण भारतीय पारम्परिक ज्ञान प्रणाली हाशिए पर चली गई है। यह एक बड़ी चुनौती है कि कैसे आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान के साथ प्राचीन व्यावहारिक पद्धतियों का एकीकरण किया जाए। भारतीय ज्ञान परम्परा पर वृहद अनुसंधान योजना परि योजनाओं की कमी और विद्वानों के रुचि का विषय न होने के कारण भारतीय संस्कृति एवं परम्परा पर आधारित कई व्यावहारिक पद्धतियां विलुप्ति के कगार पर है।

निष्कर्ष

भारतीय ज्ञान परम्परा में सतत विकास का निहतार्थ 'वसुधैव कुटुम्बकम्' एवं 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की भावना में निहित है। प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं परम्परा में विकास एक मात्रात्मक या केवल आर्थिक उपागम नहीं है, बल्कि यह आध्यात्मिक, सामाजिक, एवं पर्यावरणीय कल्याण जैसे गुणात्मक पहलू को प्रकट करता है। आज जब विश्व कई पर्यावरणीय संकट से जूझ रहा है तब सतत विकास, विशेषकर सतत विकास का भारतीय दृष्टिकोण की उपादेयता की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए।

प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का प्रकृति के साथ सहचर्य और सामंजस्य विकास मॉडल वैश्विक परिदृश्य में पर्यावरणीय संकट से बचने और सतत विकास हेतु कार्य करने का सबसे प्रभावी मार्ग हो सकता है। यह पर्यावरणीय संकट का सबसे व्यवहारिक एवं स्थायी समाधान प्रदान करता है। भारतीय ज्ञान परम्परा में सतत विकास की अवधारणा बाह्य हस्तक्षेप के बजाय आन्तरिक आत्मिक चेतना पर आधारित है। यह दृष्टिकोण वर्तमान वैश्विक पर्यावरणीय संकट को 'लोभ' का सहज परिणाम मानता है, जो इच्छा आधारित उपभोग प्रणाली से निर्मित है न कि आवश्यकता आधारित। भारत में विकास का गाँधीयन मॉडल उपभोग को आवश्यकता आधारित विवेकपूर्ण प्रणाली के रूप में स्थापित करता है। यह मॉडल इस मान्यता पर आधारित है कि प्रकृति के संसाधन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त हैं लेकिन इच्छाओं की पूर्ति के लिए अपर्याप्त । अतः उपभोग की सीमा आवश्यकता की पूर्ति के माध्यम से परिभाषित किया जाना चाहिए।

भारत के पास एक ऐसा समृद्ध वैचारिक ढाँचा है जो विकास को विनाश की सीमा तक जाने से रोक सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा को आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के साथ जोड़कर सतत विकास का नया मॉडल निर्मित किया जाए, जो सम्पूर्ण मानवता के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करे।

संदर्भ ग्रन्थ

Atharvaveda. (n.d.). *Atharvaveda: Kāṇḍa 12, Sūkta 1 (Bhūmi Sūkta)*. Chaukhamba Sanskrit Pratishthan.

Dixit, P., & Yadav, V. (Eds.). (2025). *Roots of environmental sustainability in ancient Indian knowledge system*. APD, Jaipur.

Dasgupta, P., Saha, A. R., & Singhal, R. (Eds.). (2021). *Sustainable development insights from India: Selected essays in honour of Ramprasad Sengupta*. Springer Singapore. https://doi.org/10.1007/978-981-33-4830-1

Kautilya. (n.d.). *Arthashastra* (V. Gairola, Trans.). Chaukhamba Vidyabhavan.

Parmar, S. (2025). Eco-consciousness through Indian philosophy. *Yojana, 69*(1), 38–41.

Singh, A. K. (2021). *Prachin Bharat mein paryavaran chetna aur jal prabandhan* [Environmental consciousness and water management in ancient India]. Indian Council of Historical Research (ICHR).

Ishavasya Upanishad. (n.d.). *Ishavasya Upanishad*. Gita Press.